साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 6, अंक : 38 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 12 मई से 18 मई 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

मीथेन उत्सर्जन में 45 फीसदी की कटौती हर साल बचा सकती है 260,000 लोगों की जान

नई दिल्ली। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी नई रिपोर्ट से पता चला है कि इस दशक में मानव द्वारा उत्सर्जित मीथेन को 45 फीसदी तक कम किया जा सकता है। यह कटौती 2045 तक तापमान में होने वाली वृद्धि को 0.3 डिग्री सेल्सियस तक कम कर सकती है। इसकी मदद से पैरिस समझौते के 1.5 डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को हासिल करने में मदद मिलेगी। इस कटौती की मदद से हर साल 260,000 लोगों की जान बचाई जा सकती है। साथ ही अस्थमा के कारण अस्पताल जाने को मजबूर 775,000 लोगों को इससे निजात मिल जाएगी। एक तरफ जहां इसकी मदद से अत्यधिक गर्मी के कारण बर्बाद होने वाले मानव श्रम के 7,300 करोड़ घंटों को बचाया जा सकता है, वहीं दूसरी तरफ इससे हर साल होने वाले 2.5 करोड़ टन फसलों के नुकसान को टाला जा सकता है।

यदि पूर्व-औद्योगिक काल की तुलना में आज को देखें करें तो वायुमंडल में मीथेन का स्तर तीन गुना बढ़ गया है। वहीं यदि जलवायु परिवर्तन पर मीथेन के पड़ने वाले असर की बात करें तो यह गैस कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में कहीं ज्यादा तेजी से वातावरण को गर्म कर रही है। ग्लोबल वार्मिंग के मामले में यह कार्बन डाइऑक्साइड से करीब 28 गुना अधिक शक्तिशाली है। गौरतलब है कि पूर्व औद्योगिक काल से अब तक वैश्विक तापमान में जितनी भी वृद्धि हुई है उसके करीब 30 फीसदी हिस्से के लिए मीथेन ही जिम्मेवार है। एनओएए द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार हवा में मीथेन का अंश दिसंबर 2020 में 1,892.3 पार्ट्स प्रति बिलियन (पीपीबी) पर पहुंच गया था। यह गैस 2000 के मुकाबले 6 फीसदी बढ़ चुकी है जिसमें 119 पीपीबी की वृद्धि दर्ज की गई है। यहां एक पार्ट्स प्रति बिलियन का अर्थ है कि हवा के एक अरब कणों में एक अंश मीथेन का है। हालांकि इस गैस के बारे में एक अच्छी खबर यह है कि यह कार्बनडाइऑक्साइड के विपरीत बहुत कम समय तक वातावरण में रहती है जहां सीओ2 को वातावरण से अपने आप खत्म होने में कई सदियां लग जाती हैं वहीं यह गैस दशक में ही खत्म होने लगती है। जिसका मतलब है कि यदि मीथेन उत्सर्जन में कटौती की जाए तो उसकी मदद से छोटी अवधि में ही तापमान में हो रही वृद्धि की दर में लगाम लगाई जा सकती है। रिपोर्ट के अनुसार इंसान द्वारा ज्यादातर उत्सर्जित होने वाली मीथेन तीन क्षेत्रों से आती हैं जिनमें जीवाश्म ईंधन, अपशिष्ट और कृषि शामिल हैं। जीवाश्म ईंधन क्षेत्र में तेल और गैस के निष्कर्षण, प्रसंस्करण और वितरण के द्वारा करीब 23 फीसदी मीथेन उत्सर्जित होती है, वहीं कोयला खनन के कारण 12 फीसदी का उत्सर्जन होता है। अपशिष्ट क्षेत्र में, लैंडफिल और वेस्टवाटर के कारण 20 फीसदी गैस उत्सर्जित होती है। वहीं कृषि क्षेत्र, खाद और मवेशियों के कारण करीब 32 फीसदी मीथेन उत्सर्जित होती है जबकि धान की खेती 8 फीसदी मीथेन उत्सर्जन के लिए जिम्मेवार है। इस रिपोर्ट में उन उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनकी मदद से इसके उत्सर्जन में कटौती की जा सकती है। इसके अनुसार आसानी से उपलब्ध समाधानों की मदद से 2030 तक मीथेन उत्सर्जन में 30 फीसदी की कटौती की जा सकती है। इसमें अधिकांश उपाय जीवाश्म ईंधन से जुड़े हैं जिनमें मीथेन गैस की लीकेज का पता लगाना और उसे ठीक करना शामिल है। इसी तरह कृषि और वेस्ट क्षेत्र में भी पहले से उपलब्ध समाधानों का प्रयोग किया जा सकता है।इनमें से 60 फीसदी समाधान ऐसे है जिनकी लागत बहुत कम है साथ ही 50 फीसदी समाधान ऐसे हैं जिनके खर्च के मुकाबले फायदा ज्यादा है। इसकी सबसे बड़ी सम्भावना तेल और गैस उद्योग में है जहां इसके रिसाव को रोकना और इसे वातावरण से हटाने से अतिरिक्त कमाई की जा सकती है। इनके अतिरिक्त कुछ उपाय जैसे रिन्यूएबल एनर्जी का उपयोग, ऊर्जा दक्षता में सुधार, खाद्य पदार्थों की होने वाली हानि को कम करना और कचरे में कमी जैसे उपाय किए जा सकते हैं जिनकी मदद से 2030 तक इसके उत्सर्जन को 15 फीसदी तक कम किया जा सकता है। यह ऐसे उपाय हैं जिनके एक नहीं अनेक फायदे हैं। इस रिपोर्ट से जुड़े ड्रियू शिंडल के अनुसार जलवायु परिवर्तन के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए कार्बन डाइऑक्साइड के साथ-साथ मीथेन उत्सर्जन को भी कम करना जरूरी है। इसके बारे में अच्छी खबर यह है कि इसकी रोकथाम के लिए उठाए कदम न केवल जलवायु के लिए फायदेमंद है साथ ही यह स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था के लिए भी फायदेमंद हैं। सबसे जरुरी बात यह है कि इसके लिए जिन तकनीकों की जरुरत है वो पहले से ही उपलब्ध है।

इस विश्लेषण के अनुसार इसके उत्सर्जन को रोकने और कम करने की क्षमता क्षेत्रों और देशों के आधार पर अलग-अलग है। जहां भारत और यूरोप में अपशिष्ट क्षेत्र में सुधार से उत्सर्जन में कमी की जा सकती है वहीं चीन में कोयला क्षेत्र महत्वपूर्ण है। इसके बाद पशुधन क्षेत्र की मदद से उत्सर्जन में कटौती की सबसे ज्यादा सम्भावना है। अफ्रीका में तेल और गैस के बाद पशुधन महत्वपूर्ण हैं। एशिया प्रशांत क्षेत्र में चीन और भारत को छोड़कर कोयला और अपशिष्ट क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं। वहीं मध्यपूर्व, उत्तरी अमेरिका और रूस में तेल और गैस क्षेत्र इसके उत्सर्जन में कमी लाने के लिए सबसे ज्यादा महत्व रखता है, जबकि दक्षिण अमेरिका में पशुधन सम्बन्धी नीतियां मायने रखती हैं। इस कटौती न केवल जलवायु के दृष्टिकोण से फायदेमंद होगी, साथ ही इसके एक नहीं अनेक फायदे हैं। इससे दुनिया को जलवायु टिपिंग पॉइंट पर पहुंचने से रोकने में मदद मिलेगी। वायु प्रदूषण में गिरावट आएगी जिससे लाखों लोगों की जान बचाई जा सकेगी। फसलों को होने वाले नुकसान में कमी आएगी जिससे खाद्य सुरक्षा में सुधार आएगा। गर्मी से उत्पन्न तनावों में कमी उत्पादकता में वृद्धि करेगी और इसको रोकने के प्रयासों से रोजगार के नए अवसर पैदा होंगे। जिसका फायदा सम्पूर्ण मानव जाति को मिलेगा।

(साभार)

विश्व में 27 फीसदी उत्सर्जन के लिए जिम्मेवार है अकेला चीन

नई दिल्ली। हाल ही में रोडियम ग्रुप द्वारा जारी रिपोर्ट से पता चला है कि 2019 में विश्व के 27 फीसदी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए अकेला चीन जिम्मेवार था। जिसका मतलब है कि चीन द्वारा जितना उत्सर्जन किया गया था, उतना तो सभी विकसित देशों ने मिलकर भी नहीं किया था।

यदि 1990 की बात करें तो उस समय चीन द्वारा किया जा रहा उत्सर्जन विकसित देशों के एक चौथाई से भी कम था, लेकिन पिछले तीन दशकों में यह तीन गुना से ज्यादा बढ़ चुका है। वहीं पिछले एक दशक में इसमें 25 फीसदी का इजाफा हो चुका है। गौरतलब है कि 2019 में यह उत्सर्जन बढ़कर 14 गीगाटन से ज्यादा हो चुका था। यदि 2019 के लिए जारी आंकड़ों को देखें तो इस वर्ष में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़कर करीब 52 गीगाटन तक पहुंच गया था, जोकि पिछले एक दशक में 11 फीसदी बढ़ चुका है। इसके करीब 27 फीसदी के लिए अकेला चीन और 11 फीसदी के लिए अमेरिका जिम्मेवार था। हालांकि भारत की भी हिस्सेदार 6.6 फीसदी थी। इसके बाद 6.4 फीसदी के साथ यूरोपियन यूनियन चौथे और 3.4 फीसदी के साथ इंडोनेशिया पांचवें स्थान पर था। वहीं रूस की हिस्सेदारी 3.1 फीसदी, ब्राजील की 2.8 और जापान की 2.2 फीसदी थी। इस विश्लेषण में वैश्विक उत्सर्जन के लिए जिम्मेवार छह प्रमुख ग्रीनहाउस गैसों साथ ही भूमि उपयोग और वनों को भी शामिल किया गया है।

प्रति व्यक्ति के आधार पर देखें तो अमेरिका है सबसे बड़ा उत्सर्जक- 2019 में चीन द्वारा किया उत्सर्जन न केवल अमेरिका से ज्यादा हो चुका था साथ ही यह सभी विकसित देशों द्वारा किए कुल उत्सर्जन से भी बढ़ गया था। यदि 2019 में आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) के सभी सदस्य देशों और 27 यूरोपियन यूनियन के देशों द्वारा किए कुल उत्सर्जन को देखें तो यो करीब 14,057 मिलियन मीट्रिक टन था जोकि चीन द्वारा किए कुल उत्सर्जन 14,093 मिलियन मीट्रिक टन से 36 मिलियन मीट्रिक टन कम था। हालांकि यदि आबादी के आधार पर देखें तो चीन एक बड़ा देश है जहां 140 करोड़ से ज्यादा लोग रहते हैं। इस लिहाज से उसका प्रति व्यक्ति उत्सर्जन विकसित देशों से काफी कम है। 2019 में चीन का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 10.1 टन था, जोकि पिछले दो दशकों में तीन गुना बढ़ चुका है। यह ओईसीडी के सभी सदस्य देशों द्वारा किए जा रहे प्रति व्यक्ति औसत उत्सर्जन 10.5 टन से थोड़ा ही कम था। हालांकि इसके बावजूद भी यह अमेरिका के प्रति व्यक्ति औसत उत्सर्जन 17.6 टन से काफी कम है। इस हिसाब से देखें तो अमेरिका का प्रति व्यक्ति औसत उत्सर्जन दुनिया में सबसे ज्यादा है। विश्लेषण में अनुमान लगाया गया है कि 2020 में चीन का प्रति व्यक्ति औसत उत्सर्जन ओईसीडी से ज्यादा हो सकता है। एक तरफ कोरोना महामारी के चलते दुनिया भर के देशों द्वारा किए जा रहे उत्सर्जन में तेजी से गिरावट आई है वहीं चीन के शुद्ध उत्सर्जन में 1.7 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई है।

पुरानी वन नीति से नहीं हो सकता जंगलों में आग लगने की समस्या का समाधान

उत्तराखंड। जंगल की आग से नुकसान का आंकलन तो हो ही नहीं सकता। सरकारी आंकलन का अपना तरीका होता है। सबसे पहले तो अपनी लाज बचाने का काम करती है वह। उसके बाद जो पेड़ जलने से बच गए उनके तनों की गिनती करते हैं। ठूंठ बचा होगा उससे अंदाजा लगाते हैं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आग से माइक्रो इको सिस्टम खत्म होता है। आग की वजह से जमीन के नीचे तकरीबन 10 सेंटीमीटर तक गरमी फैल जाती है। गुड बैक्टीरिया के अलावा कई प्रकार के माइक्रोब्स खत्म हो जाते हैं उनका आंकलन कहां होगा? पत्तियां जल गईं पेड़ बचा हुआ है लेकिन उस पेड़ में जो चिड़ियाएं रह रही थीं उनका क्या? हर पेड़ का अपना एक इकोसिस्टम होता है वह राख हो गया है उसका आंकलन कैसे करेंगे? नुकसान को इकोनॉमिकली कैलकुलेट किया जा सकता है लेकिन इको सिस्टम खत्म हुआ उसका आंकलन कैसे करेंगे? इस इस पर चर्चा करने का कोई मतलब ही नहीं है।

इकोसिस्टम की सर्विस अथाह होती है। पेड़ के पत्ते जो जल गए उनसे जो प्राणवायु ऑक्सीजन मिल रही थी वह तो खत्म हो गयी उसका आंकलन किस तरह करेंगे? पत्ते, डंठल, फल जो भी है वह जमीन पर गिरता है वह जमीन को उपजाऊ और नम बनाए रखता है। हरा भरा ऊपरी हिस्साआग लगने से बचाता है। जंगल जलने से मिट्टी पर भी असर पड़ता है।उसकी नमी खत्म हो जाती है वह टूटने लगती है और पहली बारिश में ही सतही मिट्टी बह जाती है। उसका नुकसान जो होता है उसका आंकलन कौन करेगा? सुखी मिटटी,जली हुई भूमि जल को अवशोषित नहीं कर पाती। जंगल से निकलने वाली नदियों के सूखने की भी यही वजह है। जंगल की आग सिर्फ पेड़-पौधों को नहीं जलाती बल्कि वन के पारिस्थितकीय तंत्र को नुकसान पहुंचाती हैउससे होने वाला नुकसान पूरे इकोसिस्टम को नुकसान पहुंचाता है जिसका आंकलन कोई नहीं कर सकता! बेचारे जंगली जानवरों की मौत की गिनती कहां होती है? सरकारी आंकलन आंखों में धूल झोंकने से ज्यादा कुछ नहीं है।

स्थानीय लोगों की भागीदारी सबसे महत्वपूर्ण है। मैं फिर कहता हूं कि जिस तरह से वन नीति ने लोगों को जंगल से दूर कर दिया है उस गैप को भरने के लिए इस पर पुनर्विचार करना बहुत ही जरूरी है। उन्हें भागीदार बनाना होगा उसके बिना आप कुछ नहीं कर सकेंगे। ना तो उनके पास कोई अधिकार है और ना ही उन्हें वनों से मिलने वाले नफा नुकसान पर कोई भागीदारी। दरअसल देखा जाए तो वन पंचायत काफी हद तक की आग पर काबू पाने में सफल हो सकते हैं। वन पंचायतों का गठन आज मात्र एक औपचारिकता ही प्रतीत होती है क्योंकि, उनके वर्तमान दायित्व और अधिकार उन्हें वनों के संरक्षण के प्रति प्रेरित भी नहीं करते हैं। इन वन पंचायतों को नये तर्ज व शैली में पर्याप्त प्रोत्साहन, इंटेंसिव देकर गांवों के हर दर्जे के वनों के रखरखाव के लिए भी जोड़ा जा सकता है। अकेले उत्तराखंड में 12 हजार से ज्यादा वन पंचायतें हैं, जो जंगल की आग को समय पर रोकने के लिए काफी हैं। दूसरी बात यह कि अंधाधुंध कटाई से कनार(शाक) व बांज(ओक) के वनों का खोज लगभग खत्म कर दिया गया की जगह ले ली है ज्वलनशील चीड़ ने। उसे कम करके कनार और बांस के पेड़ लगाए जाएं। जहां तक संभव हो वॉटरहोल्स (जलछिद्र),चैकडैम बनाएं आप मान कर चलिए जमीन पर नमी बनी रहेगी। हरे भरे पौधे बढ़ेंगे। जिसकी वजह से आग से जंगल बचा रहेंगे और दूसरी बात है कि नदियां बहती रहेंगी, जलस्रोत नहीं सूखेंगे। नदियां झरने रिचार्ज होंगे नमी बनी रहेगी। इसका एक उदाहरण है देहरादून का शुक्लपुर है। उत्तराखंड के जंगल जल रहे हैं लेकिन शुक्लपुर के जंगल बचे हुए हैं।

जलवायु कूटनीति की मुखर होती चेतावनी

ऐसा लगता है कि वैश्विक जलवायु कूटनीति एक नए एवं अधिक एक्टिविस्ट दौर में प्रवेश कर रही है। देशों के वर्ष 2050 तक शुद्ध शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करने का संकल्प जताने जैसी घोषणा में यह नजर भी आता है। चीन ने भी वर्ष 2060 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य घोषित किया हुआ है। इसी तरह यूरोप, ब्रिटेन, अमेरिका एवं जापान ने वर्ष 2030 तक उत्सर्जन स्तर में कटौती की घोषणा की है। अमेरिका और चीन के उत्सर्जन लक्ष्यों में बदलाव का ऐलान अहम है। वैश्विक जलवायु कूटनीति 40-40-20 शक्तिसंरचना पर काम करती है। पहले 40 फीसदी में दो बड़े उत्सर्जक चीन एवं अमेरिका (जी-2) शामिल हैं जो वैश्विक उत्सर्जन में 40 फीसदी अंशदान देते हैं और किसी भी प्रभावी समझौते के लिए इन दोनों देशों की सक्रिय भागीदारी एक पूर्व-शर्त है। दूसरे 40 फीसदी हिस्से में भारत समेत 18 देश शामिल हैं जिनमें से हरेक देश कम-से-कम 1 फीसदी वैश्विक कार्बन उत्सर्जन करता है। सामूहिक तौर पर ये देश इस समूह में जी-2 जितने ही अहम हैं और उत्सर्जन नतीजों पर कुछ हद तक निजी दखल रखते हैं। बाकी 20 फीसदी हिस्से में दुनिया के करीब 180 अन्य देश हैं जो उत्सर्जन की पीड़ा झेलने को अभिशप्त हैं।

तेजी से अहम होता जा रहा एक कारक वैज्ञानिक संगठनों एवं वैश्विक एक्टिविस्ट समूहों का सार्वजनिक हस्तक्षेप है। इसका एक उदाहरण वर्ष 2018 में जलवायु परिवर्तन पर गठित अंतर-सरकारी पैनल (आईपीसीसी) द्वारा जारी एक रिपोर्ट है जो तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस के बजाय 1.5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि के असर को दर्शाती है। इस रिपोर्ट ने पेरिस जलवायु समझौते में उल्लिखित संक्रमण की रफ्तार बढ़ाने पर विमर्श को तेज कर दिया है और देशों ने वर्ष 2050 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करने का संकल्प जताना शुरू कर दिया है। 21वीं सदी के मध्य तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करने के लिए वैश्विक तापमान में 1.5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि से कम नहीं रह पाएंगे, अगर अगले 30 वर्षों में हम मौजूदा नीतियों द्वारा लागू दरों पर ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करना जारी रखते हैं। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में वर्ष 2030 तक अंतराल 59 गीगा टन कार्बन डाई ऑक्साइड के बराबर रहने के आसार हैं और दुनिया की ताप वृद्धि को अगर 1.5 डिग्री सेल्सियस तक ही सीमित रखना है तो 25 गीगा टन कार्बन डाई ऑक्साइड समकक्ष का फासला काफी बड़ा है। वर्ष 2050 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य कोई मायने नहीं रखता है अगर हम उत्सर्जन कटौती में तेजी नहीं ला पाते हैं और पेरिस सम्मेलन में घोषित 2030-पश्चात के लक्ष्य नहीं बढ़ाते हैं।

पिछले दिनों अमेरिका के राष्ट्रपति जो बाइडन ने ऐलान किया कि 13 फीसदी ग्रीनहाउस उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार उनका देश वर्ष 2030 तक इसमें 50 फीसदी की कमी करेगा। इस वादे का एक अहम हिस्सा उन कदमों पर आधारित है जिन्हें अमेरिकी संसद कांग्रेस से मंजूरी हासिल करनी है। वैश्विक उत्सर्जन में 9.3 फीसदी अंशदान करने वाले यूरोपीय संघ एवं ब्रिटेन ने 2030 तक उत्सर्जन में 55 फीसदी कटौती करने की बात कही है, वहीं 2.8 फीसदी भागीदारी वाले जापान ने 46 फीसदी कटौती की घोषणा की है। इस तरह करीब 25 फीसदी उत्सर्जन वाले तमाम बड़े विकसित देशों ने वर्ष 2030 तक उत्सर्जन कटौती के लक्ष्य घोषित किए हैं जो उन्हें ताप वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के लिए करना चाहिए।

लेकिन क्या यही काफी है? हानिकारक उत्सर्जन में इन देशों के अपराध और विकासशील देशों के लिए कार्बन गुंजाइश बनाने की जरूरत को देखते हुए क्या उन्हें अधिक प्रयास नहीं करने चाहिए? अगर अमेरिका, यूरोपीय संघ एवं ब्रिटेन और जापान वर्ष 2030 तक उत्सर्जन स्तर में बड़ी कटौती करने और 2050 तक शून्य उत्सर्जन के अपने ऐलान को पूरा कर देते हैं तो भी उन्हें अब से 2050 तक उपलब्ध 150 गीगा टन कार्बन डाई ऑक्साइड समकक्ष की कार्बन गुंजाइश का इस्तेमाल करना होगा। जिस समय तक वे शुद्ध-शून्य उत्सर्जन लक्ष्य तक पहुंचते हैं, वे औद्योगीकरण-पूर्व काल से उपलब्ध कार्बन गुंजाइश का 976 गीगा टन इस्तेमाल कर चुके होंगे। इसी आधार पर चीन वर्ष 2060 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन के लक्ष्य तक पहुंचने तक 530 गीगा टन कार्बन डाई ऑक्साइड की कार्बन गुंजाइश पूरा कर चुके होंगे।

भारत चीन जैसी स्थिति में नहीं है। इसका कार्बन उत्सर्जन चीन के एक-चौथाई उत्सर्जन से थोड़ा ही अधिक है। इसके बावजूद भारत पर शुद्ध-शून्य उत्सर्जन लक्ष्य की तारीख के ऐलान का दबाव होगा। अगर यह मान लें कि भारत वर्ष 2040 में 4.5 गीगा टन सीओ2 समकक्ष के कार्बन उत्सर्जन शिखर पर होगा जो इसके मौजूदा स्तर का करीब दो-तिहाई है और वर्ष 2070 तक भारत शुद्ध- शून्य उत्सर्जन स्तर तक पहुंच जाएगा तो फिर उसे सिर्फ 194 गीगा टन सीओ2 समकक्ष कार्बन गुंजाइश की ही जरूरत होगी। साझा कार्बन गुंजाइश के विलयन में इस फर्क के लिए जरूरी है कि औद्योगिक देशों को वर्ष 2050 के पहले ही शुद्ध-शून्य उत्सर्जन तक पहुंचने का लक्ष्य रखना चाहिए और आर्थिक समृद्धि की राह पर देर से चलने वाले भारत जैसे देशों के लिए जगह खाली रखी जाए।

भारत को अपने लक्षित शुद्ध-शून्य तारीख के बारे में किसी भी व्यवहार्य ऐलान के लिए अधिक व्यापक विश्लेषण के बाद ही राजी होना चाहिए क्योंकि वर्ष 2050 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करने के बारे में उपलब्ध कुछ अध्ययन काफी हद तक अवास्तविक राह का खाका पेश करते हैं। भारत सावधानीपूर्वक अध्ययन के बाद शून्य उत्सर्जन की जो तारीख घोषित कर सकता है वह इस शर्त पर होनी चाहिए कि भारत को रियायती वित्त एवं तकनीकी प्रवाह बना रहे। जलवायु न्याय के नजरिये से ऐसा होना बेहद जरूरी है और आगे चलकर यह किसी शर्त के बगैर होगा।

इस अहम मसले पर ध्यानपूर्वक अध्ययन करने की जरूरत है कि भारत बिजली उत्पादन के लिए कोयले का इस्तेमाल बंद करने के लिए क्या समय-सीमा तय करे? राष्ट्रपति बाइडन द्वारा हाल ही में बुलाए गए सम्मेलन में चीन ने यह ऐलान किया कि वह 2026 में अपनी 15वीं पंचवर्षीय योजना शुरू होने के साथ ही कोयला उपयोग कम करना शुरू कर देगा। वहीं भारत में कोयला आधारित कुछ बिजली संयंत्र वर्ष 2026-27 तक उत्पादन शुरू करने की स्थिति में पहुंचेंगे। लेकिन भारत नवीकरणीय ऊर्जा के लिए एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम भी चलाए हुए है जिससे वर्ष 2030 तक यह 40 फीसदी बिजली पैदा कर पाएगा। उसके बाद के दौर में अतिरिक्तबिजली मांग की भरपाई नवीकरणीय ऊर्जा से ही होने की उम्मीद है। इसके साथ ही इस्पात एवं सीमेंट उत्पादन में कोयला उपभोग घटाने के लिए मुहिम चलाकर भारत कोयला उपभोग के 2030 के बाद अधिकतम स्तर पर पहुंचने और फिर उसमें क्रमिक गिरावट आने की तारीख दे सकता है।

हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये आकलन एवं प्रतिबद्धताएं उपभोग के बजाय उत्पादन से होने वाले उत्सर्जन पर आधारित हैं। उपभोग-आधारित विश्लेषण ने हमें दिखाया है कि दुनिया के सबसे धनी 10 फीसदी लोगों का कुल उत्सर्जन में 48 फीसदी अंशदान है और इनमें से आधे लोग उच्च-आय वाले देशों में रहते हैं और बाकी आधे लोगों में से अधिक मध्य-आय वाले देश के निवासी हैं। इस तरह समान लेकिन विभेदीकृत दायित्व के सिद्धांत का अंतर-देशीय नजरिया धनी एवं गरीब लोगों के बीच सामाजिक न्याय के कुछ बुनियादी सिद्धांतों से भी जुड़ा हो सकता है।

भारत ने पेरिस जलवायु सम्मेलन में की गई अपनी प्रतिबद्धताओं पर प्रभावी एवं सम्मानजनक ढंग से अमल किया है। उसे 2030 के उत्सर्जन लक्ष्यों की महत्ता पर जोर देने से पड़ने वाले दबावों का भी सामना करना होगा। भारत को सजग अध्ययन के बाद शुद्ध-शून्य उत्सर्जन की भरोसेमंद तारीख तय करने की जरूरत है ताकि जलवायु न्याय के सिद्धांत राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित प्रतिबद्धताओं और उनकी निगरानी एवं मूल्यांकन में भी नजर आएं।

मिट्टी में सूक्ष्मजीवों पर बदलते मौसम से कार्बन उत्सर्जन बढ़ रहा है -अध्ययन

मुंबई। गर्मी के मौसम के बाद सर्दियों के दौरान मानव शरीर अधिक ऊर्जा की खपत करता है, क्योंकि शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए, शरीर को अधिक मेहनत करनी पड़ती है। इसी तरह से, मौसम में बदलाव होने पर मिट्टी में बैक्टीरिया और कवक जैसे सूक्ष्मजीव भी प्रभावित होते हैं। मिट्टी के तापमान और नमी में मौसमी उतार-चढ़ाव सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं जो बदले में मिट्टी के कार्बन उत्सर्जन और पोषक चक्रों पर असर डालते हैं।

सूक्ष्मजीव ऊर्जा के स्रोत के रूप में कार्बन की खपत करते हैं। जैसे-जैसे मौसम में बदलाव होता है, सूक्ष्मजीव अपनी गतिविधियों में वृद्धि करते हैं, वे जितने अधिक कार्बन का उपभोग करते हैं उतना ही वातावरण में भी कार्बन का उत्सर्जन होता है। सैन डिएगो स्टेट यूनिवर्सिटी के पारिस्थितिकीविदों ने एक नए मॉडल से किए गए अध्ययन में पाया कि, इन सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) पर मौसम के आधार पर वैश्विक कार्बन उत्सर्जन का प्रभाव पड़ता है, यह एक बुनियादी तंत्र के रूप में कार्य करता है जो स्थानीय-जलवायु के परस्पर प्रभाव और जमीन की मिट्टी के जैव-रसायन चीजों को नियंत्रित करता है। वैश्विक पारिस्थितिकीविद और प्रमुख अध्ययनकर्ता जियाओफेंग जू ने कहा कि मिट्टी में सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) की आबादी एक उत्पादक चरण में होती है, तो इनकी संख्या और आकार में वृद्धि के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो वे अधिक कार्बन का उपभोग कर पूरा करते हैं। अध्ययनकर्ता ने बताया यह हमने तब देखा जब हमने मिट्टी की मात्रा और गतिविधियों में बदलाव किया। अध्ययनकर्ता ने बताया कि सिमुलेशन में सूक्ष्मजीवों और मिट्टी के कार्बन में पारस्परिक परिवर्तनों का अवलोकन किया गया, हमने पाया कि जब मौसमी बदलाव के प्रभाव को हटा दिया गया था, तो सूक्ष्म जीवों की श्वसन दर कम हो गई थी। सूक्ष्मजीवों की आबादी को लगातार औसत स्तर पर बनाए रखने से कार्बन उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। शोधकर्ताओं ने कहा कि मिट्टी के कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए भूमि का प्रबंधन करने वाले मिट्टी की सूक्ष्मजीवों की आबादी में उतार-चढ़ाव को कम करने और अन्य तरीकों को अपनाया जा सकता है। जो कि कृषि वैज्ञानिकों और उत्पादकों को मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद कर सकता है। शोधकर्ताओं ने एक माइक्रोबियल मॉडलिंग फ्रेमवर्क का उपयोग करते हुए सीएलएम-माइक्रोब, एक भूमि आधारित मॉडल का उपयोग किया। यह मॉडल एसडीएसयू के लैब में विकसित किया गया। जहां इस अध्ययन को अंजाम दिया गया वहां कि जलवायु में बदलाव, स्थानीय कार्बन चक्र को कैसे प्रभावित करता है यह जानने के लिए मॉडल को एक सुपरकंप्यूटर पर लगाया गया। शोधकर्ता जू ने कहा ने कहा कि हम जानते हैं कि मिट्टी के सूक्ष्मजीव कार्बन के निकलने को बढ़ाते हैं। कार्बन निकलने से इसके अलग-अलग जगहों पर प्रभाव पड़ते हैं जिसमें भूमि, महासागर और वायुमंडल के बीच कार्बन की मात्रा पर भी असर पड़ता है। मिट्टी में कार्बन की मदद से सूक्ष्मजीव अपने चक्र को पूरा करते हैं, जिनका कार्बन के नियंत्रण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। मिट्टी के विभिन्न सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) के समूह कार्बन चक्र में अलग-अलग भूमिका निभाते हैं। एसडीएसयू के शोधकर्ता और डॉक्टरेट छात्र लियुआन ने कहा सूक्ष्म जीव और फंगल की गतिविधि के मॉडल को अपनाने से कार्बन चक्र पर मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के प्रभाव के बारे में बहुत अधिक जानकारी मिलती है। ग्लोबल चेंज बायोलॉजी में प्रकाशित इस अध्ययन में कहा गया कि मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की खोज विज्ञान को आगे बढ़ाती है और बदलती जलवायु परिस्थितियों में मिट्टी के कार्बन भंडारण की हमारी समझ और पारिस्थितिक के महत्व को सामने लाती है। शोधकर्ताओं ने उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय वन, समशीतोष्ण शंकुधारी वन, समशीतोष्ण जंगल, झाड़ी वाले जंगल, झाड़ी, घास के मैदान, रेगिस्तान, टुंड्रा, और आर्द्रभूमि सहित नौ प्राकृतिक बायोम में एक व्यक्तिगत भूखंड के पैमाने पर कार्बन प्रवाह को देखा। एसडीएसयू के सह-अध्ययनकर्ता और एक पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिकी विशेषज्ञ चुन-ता लाइ ने कहा यह अध्ययन पृथ्वी प्रणाली के मॉडल में सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) के साथ मौसम को शामिल करने की आवश्यकता को दिखाता है, ताकि हम जलवायु-कार्बन के परस्पर पड़ने वाले प्रभाव का बेहतर अनुमान लगा सकें। शोधकर्ता दुनिया भर में भूमि उपयोग में होने वाले बदलावों को देखते हुए सूक्ष्मजीवों (माइक्रोबियल) का मौसमी और वैश्विक कार्बन संतुलन पर इसके प्रभाव का पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं।

गर्भावस्था में भारी धातुओं का संपर्क बिगाड़ सकता है मां और बच्चे का स्वास्थ्य.....

नई दिल्ली। गर्भावस्था के दौरान यदि महिलाएं हैवी मेटल्स जैसे निकल, आर्सेनिक, कोबाल्ट और सीसा के संपर्क में आती हैं तो वो उनके और होने वाले बच्चे के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। रटगर्स यूनिवर्सिटी द्वारा किए इस शोध के अनुसार इन धातुओं के संपर्क में आने से महिलाओं के हार्मोन में बाधा आ जाती है, जो स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकती है। यह शोध एनवायरनमेंट इंटरनेशनल जर्नल में प्रकाशित हुआ है।

शोध से पता चला है कि गर्भावस्था में इन मेटल्स के संपर्क में आने से बच्चे के जन्म के समय होने वाली समस्याएं जैसे समय से पहले जन्म और जन्म के समय बच्चे का कम वजन हो सकती हैं। इसके साथ ही महिलाओं में प्रीक्लैम्पसिया (बच्चे के जन्मे के समय उच्च रक्तचाप) जैसी समस्याएं हो सकती हैं। हालांकि यह क्यों होता है इस बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। इस नए शोध से पता चला है कि कुछ धातुएं महिलाओं के शरीर में अंतःस्त्रावी तंत्र (एंडोक्राइन सिस्टम) को बाधित कर सकती हैं। यह तंत्र हमारे शरीर में हार्मोन को नियंत्रित करता है। इस तंत्र में आने वाली बाधा बाद में बच्चों के स्वास्थ्य और उनमें बीमारी के जोखिम को और बढ़ा सकती है। इस शोध की प्रमुख शोधकर्ता और रटगर्स में सहायक प्रोफेसर जोसीमार रिवेरा-नुनेज के अनुसार गर्भाधान से प्रसव तक महिलाओं के शरीर में एक नाजुक हार्मोनल संतुलन बना रहता है। यदि इस संतुलन में गड़बड़ी आती है तो वो मां और भ्रूण दोनों को नुकसान पहुंचा सकती है। यह शोध 815 महिलाओं पर किया गया है। जिसमें गर्भवती महिलाओं और उनके बच्चों पर पर्यावरण प्रदूषण के असर को मापा गया है। इसमें पता चला है कि गर्भावस्था के दौरान मेटल प्रसव पूर्व हार्मोन की मात्रा पर असर डालते हैं। जिससे शरीर में अंतःस्त्रावी तंत्र बाधित हो जाता है। यह व्यवधान इस बात पर निर्भर करता है कि गर्भावस्था के दौरान महिला कब मेटल के संपर्क में आई थी। इनके चलते ने केवल जन्म के समय बच्चे और मां का स्वास्थ्य प्रभावित होता है, साथ ही यह कई अन्य तरीकों से भी असर डालता है।जहां गर्भावस्था के दौरान सेक्स-स्टेरॉयड हार्मोन में बदलाव भ्रूण के विकास पर असर डालता है, जिससे जन्म के समय बच्चे का वजन कम रह जाता है। जन्म के समय बच्चे का शारीरिक विकास भविष्य में बच्चे के विकास पर असर डालता है और उनमें मोटापा, स्तन कैंसर और आगे चलकर होने वाली बीमारियों का कारण बनता है। रिवेरा-नुनेज ने जानकारी दी है कि प्यूर्टो रिको में 18 सक्रिय साइट हैं जो वहां पर्यावरण प्रदूषण कर रही हैं। जिससे वहां रहने वाले लोग विषाक्त धातुओं के संपर्क में आ सकते हैं। उनके अनुसार अमेरिका की तुलना में प्यूर्टो रिको में गर्भवती महिलाओं के इन धातुओं के संपर्क में आने का खतरा कहीं ज्यादा है। उनके अनुसार यहां बच्चे के समय से पहले जन्म का जोखिम अमेरिका से करीब 12 फीसदी ज्यादा है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008